Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
July-December 2023 4(2), 3770–3773

LOGRANGI NATAK ON CONTEMPORARY HINDI THEATRE

समकालीन हिंदी रंगमंच पर लोगरंगी नाटक

Shashikant Rai [1]

[1] Assistant Professor, Punjab University Constituent College Patto Hira Singh

Corresponding Author
Shashikant Rai,
skrai221115@gmail.com

DOI
10.29121/shodhkosh.v4.i2.2023.4133

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2023 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

OPEN ACCESS

ABSTRACT

English: Theatre: It cannot be said with certainty when the theatre emerged. The word theatre has been used more in modern times but all the tendencies and sensibilities inherent in theatre are present in the scriptures as well as in the people. In its limited meaning, it has been considered synonymous with the combined form of both Rangshirsha and Rangpeetha described in the Natya Shastra.

Hindi: रंगमंच: रंगमंच के उदय किस समय हुआ कुछ निश्चित तौर पर कहा नहीं जा सकता है। रंगमंच शब्द का ज्यादा प्रयोग आधुनिक समय में किया गया है लेकिन रंगमंच में अंतर्निहित सारी प्रवृत्तियां और संवेदना शास्त्रों में भी है और लोक में भी है।अपने सीमित अर्थ में यह नाट्य शास्त्र में वर्णित रंगशीर्ष एवं रंगपीठ दोनों संयुक्त रुप का पर्याय ही समझा जाता रहा है।

1. प्रस्तावना

इस विषय में डॉ अज्ञात का कथन है-

" रंग मंच अपेक्षाकृत एक अर्वाचीन शब्द है, जिसका उल्लेख भरत नाट्यशास्त्र या अन्य परवर्ती नाट्य-विषयक लक्षण ग्रंथों में नहीं मिलता।अपने सीमित अर्थ में यह नाट्य शास्त्र में वर्णित 'रंगशीर्ष' अथवा रंगशीर्ष एवं रंग पीठ दोनों का संयुक्त पर्याय प्रतीत होता है। नाट्य मंडल के आधे पृष्ठ भाग को पुन: दो बराबर भागों में विभक्त करने पर उसके आधे अग्रभाग को रंग शीर्ष और पीछे के भाग को नेपथ्य कहते हैं ।अभिनव गुप्ताचार्य ने इस रंगशीर्ष वाले भाग के पुन: दो भाग कर, शिरोभाग को रंगशीर्ष और पादभाग को रंग पीठ माना है। इस प्रकार रंगशीर्ष और रंगपीठ वस्तुत: एक ही 'रंग' के दो पीछे आगे के भाग हैं। इस प्रकार रंग कहने मात्र से पूरे रंगमंच का बोध होता है, अत: रंगमंच में मंच शब्द अनावश्यक प्रतीत होता है वैसे ही जैसे पावरोटी में रोटी क्योंकि पुर्तगाली भाषा में पाव शब्द का अर्थ ही रोटी होता है। भाषा -विकास के सिद्धांत के अंतर्गत लोक व्यवहार की कसौटी पर चढ़कर 'पाव' शब्द पाव-रोटी बन गया और रंग शब्द रंगमंच।"1

रंग शब्द का कोशगत अर्थ है नाचना, गाना, नृत्य, अभिनय का स्थान और मंच का शब्दार्थ है वह ऊंचा मंडप जिस पर बैठकर सर्वसाधारण के सामने कोई कार्य किया जाए।

डॉ माधुरी सुबोध के अनुसार "रंगमंच शब्द का प्रयोग नया है जिसे हिंदी में बंगला से ग्रहण किया गया है। 'रंग' शब्द का अर्थ मंच ही है। गुजराती और मराठी में परंपरागत शब्द रंगभूमि का ही प्रयोग हो रहा है। मध्यकालीन साहित्य में भी रंगभूमि का ही प्रयोग मिलता है 'रंगभूमि आए दो भाई' (तुलसी) कंस ने भी कृष्ण को मल्लयुद्ध के लिए अपनी रंगशाला में आमंत्रित किया जहां 'रंगभूमि' का निर्माण किया गया था।"2

ध्यान देने योग्य बात यह है कि भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में 'नाट्य' शब्द का प्रयोग केवल नाटक के रूप में न करके व्यापक अर्थ में किया है जिसके अंतर्गत रंगमंच अभिनय, नृत्य, संगीत, रस, वेशभूषा रंगशिल्प,दर्शक आदि सभी पक्ष आ जाते हैं।

"इसमें संपूर्ण त्रैलोक्य के भावों का अनुकरण है। इस नाट्य वेद के अंदर कहीं धर्म है, कहीं क्रीड़ा, कहीं अर्थ, कहीं शांति अथवा श्रम, कहीं हंसी, कहीं युद्ध ,कहीं काम, और कहीं वध का अनुकरण है। इसमें धर्म का पालन करने वालों के लिए कर्तव्य की शिक्षा है;काम की चाहना करने वालों के लिए काम है।दुर्विनितों को संयमित करने और विनीत जनों के संयम की विधि का उल्लेख भी इसमें है। यह कायरों में साहस उत्पन्न करने वाला, यानी वीरों में उत्साह भरने वाला अजातियों को विशेष बोध कराने वाला तथा जातियों को विद्वता प्रदान करने वाला है।यह ऐश्वर्यवानों के लिए विलास है, दुखियों को साहस देने वाला है, अर्थोपार्जन के इच्छुकों के लिए अर्थपद और उद्विग्न चित्तवालों के लिए धैर्य प्रदान करने वाला है।... यह नाट्य उत्तम मध्यम और नीच सभी प्रकार के लोगों के कार्यों से से संबंध है,और सब को हितकारी उपदेश देने वाला तथा धैर्य, क्रीड़ा, सुख देने वाला भी है।... यह नाट्य, दुख से आर्त परिश्रम से क्लांत शोक से संतप्त जनों को समय पर विश्राम देने वाला होगा.. न कोई ऐसा ज्ञान है, न शिल्प है, न विद्या है, न कोई ऐसी कला है न योग है और न ही कोई कार्य ही है जो इस नाट्य में न प्रदर्शित किया जाता हो।"3

लोकरंगमंचो की परंपरा भी बहुत सुदृढ़ रही है। इसकी परम्परा की जड़ें मनुष्य की आदिम जिजीविषा से जुड़ी हुई है । भारत के नाट्य शास्त्र में लोकधर्मी और नाट्याधर्मी दोनों परंपराओं का न सिर्फ उल्लेख है बल्कि लोकधर्मी नाट्य परंपरा के नाट्यधर्मी रूढ़ियों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है।

"भरत का नाट्यशास्त्र कोई आकस्मिक उपज नहीं वरन पूर्वपरंपरा को लेकर की गई एक सुनिश्चित योजना है, क्योंकि इतना तो स्पष्ट है कि भरत के नाट्यशास्त्र का आधार लोकनाट्य ही रहे होंगे।"4

आज रंगमंच शब्द अंग्रेजी के 'थिएटर' शब्द का पर्याय बन गया है थिएटर के अंतर्गत नाट्य साहित्य प्रस्तुतीकरण, अभिनय, रंग शिल्प, रंग भवन, रंगशाला और नाट्यालोचन और इन सब का शास्त्र समाहित है।

रंगमंच को व्याख्यायित करते हुए गोविंद चातक लिखते है-" 'रंगमंच' शब्द का प्रयोग व्यापक और सीमित दोनों अर्थों में किया जाता है इसके लिए दो शब्द प्रयोग में आते हैं स्टेज और थिएटर। स्टेज'शब्द प्रायः नाट्य मंडल अथवा रंगशाला के लिए प्रयुक्त होता है। बहुत खींचतान करने पर इसका जो चित्र उभरता है उसमें नाट्य मंडल दृश्यबंध, यवनिका, प्रकाश योजना, अभिनेता, टिकटघर, सज्जाघर , प्रेक्षागृह आदि आते हैं।वस्तुतः स्टेज शब्द रंगमंच के दृश्य स्थूल पक्ष को ही अधिक व्यंजित करता है किंतु रंगमंच बाहर से स्थूल भले ही हो उसका एक जटिल आंतरिक सूक्ष्म स्वरूप भी है। वाह्य स्थूल रूप उस आंतरिक सूक्ष्म स्वरूप की उपलब्धि का साधन मात्र है। अंग्रेजी का थिएटर शब्द रंगमंच के स्थूल और सूक्ष्म दोनों अंगों को अभिव्यक्त करता है।.... वस्तुतः थिएटर अपने में एक पूरी संस्था, एक पूरा सर्जनात्मक अभियान है और उसकी कई आयाम और भावभूमियाँ हैं।.... रंगकर्म के इन विभिन्न आयामों के कारण रंगमंच एक विलक्षण संबंध सूत्रता के बीच जन्म लेता है और कला के अनेक आयामों से संयुक्त हो जाता है। थिएटर शब्द रंगमंच की इसी व्यापक अवधारणा को उजागर करता है।"5

"वास्तव में रंगमंच मनुष्य की सृजनात्मक प्रवृत्तियों का क्रीड़ा स्थली है बाहरी दुनिया के बीच अपने रचे संसार में जीवन को अनुभूत करने और उसे पुनः रचने का मूल भाव मनुष्य में निरंतर निवास करता है। यह मूल भाव ही उसे और उसके निमित्त रंग संसार को अनुभूति से जोड़ देता है। यही रंगमंच कोई स्थूल वस्तु न रहकर एक भाव, एक अनुभूति बन जाता है। रंगमंच नाटक के संप्रेषण का एक माध्यम है, पर यह संप्रेषण सीधा नहीं है संवेदनात्मक है। वह एक जीवंत विधा है देश और काल की सीमा में वह जीवित का आभास देती है। इसलिए वह जीवन सदृश्य है इसमें जीवन को वर्णित नहीं केवल संवेदित किया जा सकता है रंगमंच भावों को अभिव्यक्त और संप्रेषित करता है।"6

उपरोक्त विद्वानों की परिभाषा और विचार से हम यह कह सकते हैं कि रंगमंच का फलक बहुत विस्तृत और बहुआयामी है समय-समय पर इसके स्वरूप में परिवर्तन होता चला आया है,लेकिन कुल मिलाकर यह है कि रंगमंच एक सामूहिक प्रदर्शनकारी कला है जिसका प्रयोग नाटकों के मंचन में किया जाता है।

हिंदी रंगमंच: समकालीन हिंदी रंगमंच के जिस स्वरूप को आज हम देखते है उसके बनने के पीछे एक लंबी परंपरा रही है" कोई भी विधा अपने वर्तमान में जिस रूप में विद्यमान रहती है, उसके पीछे एक निश्चित पृष्ठभूमि और परंपरा होती है उस से कटकर या हटकर किसी भी विधा की सामयिक स्थिति का विश्लेषण करना ना तो संभव होता है और न समीचीन।"7

हिंदी का रंगमंच की परंपरा सीधे-सीधे संस्कृत की रंग परंपरा से जुड़ती है भले उसका स्वरूप आगे चलकर बदल गया लेकिन तत्व उन्हीं से निर्मित जान पड़ता है।श्री नेमीचंद जैन के अनुसार प्राचीन भारत में संपन्न नाट्य- कार्य के जो संदर्भ प्राप्त होते हैं वे ईसापूर्व पांचवी- छठी से लेकर दूसरी तीसरी सदी के हैं जो इस देश में रंग कार्य की परंपरा का अत्यंत प्राचीन होना सूचित करते हैं ।यह कार्यकलाप मुख्यतः संगीत नृत्य मूलक अभिनय अथवा वीरकाव्यों,लोकख्यानों या गाथाओं का सीधा-सीधा अथवा अभिनय मूलक गायन ही होता होगा। पतंजलि का महाभाष्य में कंसवध और बलिबंधन नाटकों का भी उल्लेख है और बौद्ध कवि नाटककार अश्वघोष की सारिपुत्र प्रकरण के तो कुछ अंश भी मिले हैं। प्रदर्शनकारी कलाओं के विख्यात ग्रंथ नाट्य शास्त्र में वर्णित नाट्योत्पत्ति की कथा में भी देवासुरसंग्राम, अमृतमंथन, और त्रिपुरदाह नाटकों के प्रयोग की चर्चा है।

इन सब संदर्भों के आधार पर इतना तो निश्चित ही कहा जा सकता है कि किसी ना किसी प्रकार और स्तर का संगीत नृत्य प्रधान अभिनय मूलक कार्यकलाप इस देश में ईशा के सैकड़ों वर्षो पहले से होता रहा है, जिसने उपयुक्त सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थिति उत्पन्न होने पर अधिक व्यवस्थित और विकसित संस्कृत नाटक और रंगमंच का रूप लिया ।"8

इतना सुदृढ़ सैद्धांतिक व्यावहारिक आधार होने के बाद भी संस्कृत रंगमंच और नाटकों की परंपरा एक समय में विघटित होकर लगभग सिमट गई ।इसके बहुत सारे कारण है एक प्रमुख कारण का जिक्र करते हुए बलवंत गार्गी लिखते हैं " काव्य पर अधिक बल दिए जाने के कारण इसके बाद के नाटककार अलंकारों और उपमाओं के प्रयोग के लिए एक दूसरे से प्रतियोगिता करने लगे। सहज और सरल भाषा के स्थान पर मीनाकारी और चमक-दमक आ गयी। इन कारणों से धीरे-धीरे संस्कृत नाटक का पतन आरंभ हो गया। बारहवीं शताब्दी में मुसलमान के आक्रमण से मृतप्राय संस्कृत नाटक ने दम तोड़ दिया ।मुसलमान बादशाहो की विजय के साथ ही अधिकांश ललित कलाएं और रंगमंच समाप्त हो गए जनसाधारण की भाषा और शास्त्रियों की संस्कृत के बीच की खाई बढ़ती गई और अंततः संस्कृत रंगमंच इतिहास के पन्नों में दब गया।9

संस्कृत रंगमंच के विघटन से उत्पन्न रिक्तता को विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में पनप रहे लोक रंगमंच ने हीं भरा। यह रंग- कार्य संस्कृत रंगमंच के कुछ तत्वों के साथ-साथ नृत्य संगीत के अनुष्ठानमूलक तथा आम जनता में प्रचलित ऐसी ही अन्य विभिन्न शैलियों के बीच आदान-प्रदान करता हुआ विकसित होने लगा जिसे आज हम पारंपरिक रंगमंच या लोकरंगमंच कहते हैं। आगे विस्तार से इस पर बातचीत की जाएगी कि किस प्रकार लोकरंगी नाटकों ने समकालीन रंगमंच को समृद्ध या नया आयाम दिया।

आधुनिक हिंदी रंगमंच के विकास को हम मोटे मोटे दो तरह से विभाजित करके देखने की कोशिश करेंगे

1) स्वतंत्रता-पूर्व हिंदी रंगमंच

2.) स्वतान्त्रयोत्तर हिंदी रंगमंच

ब्रिटिश हुकूमत के कार्यकाल में हिंदुस्तान की सामाजिक,आर्थिक राजनीतिक परिस्थितियां प्रभावित और परिवर्तित होती रही इसी के साथ साथ रंगकर्म भी प्रभावित होता गया

" उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में जो नया रंगकर्म हमारे देश में शुरू हुआ वह पूरी तरह पश्चिमी रंगकर्म की ही नकल था। उसे अपनाने वाला हमारे देश का वह अभिजात वर्ग था जिसने अंग्रेजों की राजनैतिक प्रभुता भी, सामाजिक, सांस्कृतिक श्रेष्ठता भी पूरी तरह स्वीकार कर ली थी और जो नयी अंग्रेजी शिक्षा पाकर अब शासकों जैसा ही आचरण करने में गौरव अनुभव करता था। इसलिए उसने पहले अंग्रेजी नाटक अंग्रेजी में, फिर उनके अनुवाद या भारतीय रूपांतरण अपनी भाषाओं में खेलना शुरू किया और फिर अंततः उनकी नकल पर ही भारती कथानको पर नए नाटक लिखें और खेले जाने लगे। इस संदर्भ में यह भी विचारणीय और महत्वपूर्ण है कि यह रंगकर्म केवल शहरों के नवशिक्षित समुदाय में ही चला और स्वीकृत हुआ। कुछेक क्षेत्रों में नयी बनी पेशेवर घुमंतू मंडलियों के प्रदर्शन छोटे कस्बों तक अवश्य पहुंचे और पसंद भी किए गए।पर देहातों से तो उसका कोई संपर्क ही नहीं हुआ और वहां अलग-अलग क्षेत्रों में उनके पारंपरिक नाट्य लगातार सक्रिय और लोकप्रिय रहे आये।"10

आज यह बात एकदम स्पष्ट हो गयी है और इसे स्वीकार भी किया जाने लगा है की हिंदी रंगमंच के विकास में पारसी रंगमंच की भूमिका को भुलाया नहीं जा सकता या कम करके नहीं देखा जा सकता पारसी थियेटर शुद्ध व्यवसायिक थिएटर था, इसलिए उसने अपनी मौलिक रंगपद्धतियो का विकास किया। इसमें अंग्रेजी की तुलना में भारतीय लोकरंग, शेरो -शायरी, उर्दू मिश्रित संवाद' अतिनाटकीयता, भावुकता का आवेश, गीत संगीत की बहुलता, नृत्य चमत्कारिक ध्वनि प्रभाव आदि पर अत्यधिक बल दिया गया।

आधुनिक हिंदी नाट्य साहित्य में भारतेंदु के आगमन से पूर्व हिंदी को रंगमंच देने में पारसी थियेटर कंपनियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।डॉ राम जन्म शर्मा लिखते हैं कि "अंग्रेजों ने कोलकाता और मुंबई जैसे बड़े शहरों में मनोरंजनार्थ अच्छे खासे थिएटर का निर्माण करा रखा था किंतु उनमें भारतीयों का प्रवेश वर्जित था।सन 1853 ईस्वी के आस-पास अनेक विदेशी कंपनियां आने लगी इनका प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ने लगा और धन संपन्न पारसियों ने उन विदेशी कंपनियों के असर का पूरा-पूरा लाभ उठाया। पारसियों को उच्च शिक्षा दी जाती थी, अतः उन में अंग्रेजी भाषा का ज्ञान रहता था साथ ही विदेशी कंपनियों द्वारा किए गए अभिनय को समझने की शक्ति भी उनमें रहती थी। पारसी विद्यार्थी जो एलफिंस्टन कॉलेज में शिक्षा ग्रहण करते थे, शौकिया क्लबों द्वारा शेक्सपियर के नाटकों का अभिनय किया करते थे।"11

समकालीन हिंदी नाटकों और समकालीन हिंदी रंगमंच में आये परिवर्तन के विविध आयाम रहे हैं ।नाटककार और निर्देशक और संस्थाओं ने नाटकों को समाजोन्मुख, जनतांत्रिक बनाने के लिए नाटक और रंगमंच का जुड़ाव सीधे-सीधे गांव और वहां की जनता के क्रिया व्यापार संबंधित सारी गतिविधियों से करने की कोशिश की इस कोशिश के दौरान उन्होंने उनकी ही लोग शैलियों और उनके ही लोकरंग परम्परा को मंच पर प्रस्तुत करके लोक धर्मी रंगमंच परंपरा को और मजबूत बनाया।

संदर्भ ग्रंथ

नेमीचंद्र जैन, रंग परंपरा ,पृष्ठ 15
डॉक्टर अज्ञात, भारतीय रंगमंच का विवेचनात्मक इतिहास ,पृष्ठ 27
डॉ माधुरी सुबोध, हमारी रंग अस्मिता

डॉ शिव कुमार मथुर, भारत के लोक नाट्य ,पृष्ठ 6
गोविंद चातक, रंगमंच कला और दृष्टि पृष्ठ 22-23
वही,पृष्ठ 25
नेमीचंद्र जैन ,रंग परंपरा ,पृष्ठ 13
वही, पृष्ठ 14
बलवंत गार्गी, रंगमंच ,पृष्ठ 49
नेमीचंद जैन, रंग परंपरा, पृष्ठ 56
डॉ रामजन्म शर्मा, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक ,पृष्ठ 62-63